

शांत सुधारस्वरूप,
 अतीन्द्रिय
 आनंदामृत के
 नित्य भोजी,
 अल्पकाल में अनंत
 चतुष्टयस्वरूप
 परिणमन करनेवाले,
 मुमुक्षुजीव के आदर्श
 प्रमान धन्यावतार
 प्रथममूर्ति पूज्य
 बहिनश्री चंपाबहिन के
 १०८ वें मंगलकारी
 जन्मोत्सव के अवसर
 पर अत्यंत विनम्रभाव
 से, दासत्वभाव से
 कोटि कोटि वंदन...



सामान्यतः पीछले २००-४०० वर्ष जीतने भी ज्ञानी प्रसिद्ध हुए हैं
 उनमें से इतनी छोटी उम्र में आत्मज्ञान की प्राप्ति की हो, सम्यग्दर्शन-
 स्वानुभव की प्राप्ति की हो ऐसा यह एक रेकोर्ड का विषय गिनना चाहिए।

- पूज्य भाईश्री (अध्यात्म सुधा भाग-१, पृष्ठ २८९)

स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत्-२५४६: अंक-२८४, वर्ष-२४, अगस्त-२०२१

आषाढ कृष्ण ९, मंगलवार, दि. १२-७-१९६६, योगसार पर
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का प्रवचन, गाथा-८५ प्रवचन-३२

यह योगसार शास्त्र है। योगीन्द्रदेव दिगम्बर मुनि हो गये, उन्होंने यह योगसार स्वयं के सम्बोधन के लिए बनाया है - ऐसा अन्त में लिखा है। पहले ऐसा कहा है कि जो भव भ्रमण से भयभीत है, जिसे त्रास लगा है, उसके लिए मैं बनाता हूँ। फिर लिखा कि मैंने अपनी भावना के लिए, सम्बोधन के लिए बनाया है। अन्त में वह गाथा है। योगसार का अर्थ, देखो! यह ८५ (गाथा में) कहा। 'जहाँ चेतन वहाँ सकल गुण' यह पाठ है।

जहाँ चेतन तहाँ सकल गुण, केवली बोले ऐम।
प्रगट अनुभव आपनो, निर्मल करे सो
प्रेम॥

आत्मा अनन्त गुण सम्पन्न एक वस्तु है, उसकी अन्तर्दृष्टि अनुभव करने से एक आत्मा के ग्रहण में उसमें अनन्त गुणों का ग्रहण हो जाता है। समझ में आया?

एक भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में अनन्त गुणरूप एकरूप, अनन्त गुणरूप एकरूप (वस्तु है)। कितने अनन्त गुण? आकाश के प्रदेश हैं, उनसे अनन्तगुने गुण हैं। आहा...हा...! छह महीने और आठ समय में छह सौ आठ जीव मुक्ति - परमात्मदशा को प्रवाह में प्राप्त होते हैं। छह महीने और आठ समय में छह सौ आठ जीव मुक्ति (प्राप्त करते हैं)। अभी तक में जितने मुक्त हुए उनसे अनन्तगुने

जीव निगोद के एक शरीर में हैं। ऐसे-ऐसे जीव सिद्ध से अनन्तगुने हैं, जीव से पुद्गल की संख्या अनन्तगुनी है, पुद्गल से तीन काल के समयों की संख्या अनन्तगुनी है, उनसे आकाश के प्रदेश की संख्या अनन्तगुनी है। आहा...हा...!

यह भगवान कहते हैं कि, अनन्त गुण है। दोष तो कोई गुण का अल्प दोष है। समझ में आया? अनन्त गुण में दोष नहीं है। किसी गुण की किसी पर्याय में अल्प दोष है। गुण तो अनन्त-अनन्त है। वे अनन्त-अनन्त गुण असंख्य प्रदेश में व्यापक है। आकाश के प्रदेश अमाप है, उसका कोई माप है? आकाश का कहीं अन्त आया? बाद में... बाद में... बाद में... बाद में... (क्या)? नास्तिक को भी तर्क से कहना पड़ेगा कि आकाश है, उसमें चले जाओ तो उसका अन्त कहाँ? अन्त होवे तो बाद में क्या? ऐसा ही आकाश के क्षेत्र का, प्रदेश का भी अचिन्त्य स्वभाव है, अनन्त स्वभाव है, अमाप क्षेत्र है। ऐसे आकाश के अमाप अनन्त प्रदेश से एक भगवान आत्मा के अनन्त गुण हैं। ओहो...हो...! उन अनन्त गुणों का एकरूप भगवान आत्मा है। उसे अन्दर में से विश्वास आना चाहिए न! ऐसे का ऐसे कल्पना से, क्षयोपशम से धारणा कर ले वह बात नहीं है। समझ में आया?

अन्तर में उस भगवान आत्मा में इतने

अनन्तानन्त... अनन्तानन्त गुण व्यापक हैं। भगवान् आत्मा ऐसे एक रूप का अनुभव करने से, उस पर दृष्टि देने से, उसको ज्ञेय बनाने से, चारित्र में उसको आश्रय बनाने से, चारित्र में उसे आश्रय बनाने से अनन्त गुण की पर्याय (एक) समय में प्रगट होती है। समझ में आया?

वही कहते हैं, देखो! एक आत्मा का ग्रहण हो गया, वहाँ आत्मा के सर्व गुणों का ग्रहण हो गया... कल वहाँ आया था, भाई! दूसरा पैराग्राफ का अर्थ किया था। आहा...हा...! जहाँ विकल्प को अवकाश नहीं... वे अनन्तानन्त गुण जो स्वभावस्वरूप,

आकाश का स्वभाव... स्वभाव... स्वभाव, वहाँ तर्क और विकल्प क्या काम करेंगे? जिस ज्ञान में अमाप आकाश की प्रतीति हुई कि अमाप... अमाप... अमाप - ऐसे आकाश की संख्या से अनन्तगुने अमाप... अमाप... कोई माप नहीं। ओहो...हो...! ऐसा भाव समुदाय एक आत्मा, गुण समुदाय आत्मा... भाव समुदाय कहो या गुण समुदाय कहो, उसकी अन्तर रुचि करके अपने में वह वस्तु पोषाण में (आवे)। पोषाण को क्या कहते हैं हिन्दी में? पोषाण, पोषाण समझ में आया? व्यापारी को यह माल पोषाता है न? पोषाता है। यह अन्दर में पोषाण होना चाहिए... व्यापारी पाँच रुपये मन लाये, उसके छह रुपये पैदा हों तो माल लेगा न? पोषाता होगा तो माल लेगा या बिना पोषाये माल लेगा? पाँच रुपये मण ले और साढे. चार में बिके (वह लेगा)?

इसी प्रकार आत्मा में इतने अनन्त गुण हैं, उनका पोषाण होना चाहिए। लक्ष्य में पोषाण (होना चाहिए कि) एक स्वरूप भगवान् में अनन्त स्वरूप से गुण। कहते हैं, भगवान् एक आत्मा को अन्तर्मुख दृष्टि करने से, पकड़ने से अनन्त गुण की पर्याय प्रगट होना उसमें आ जाता है। श्रद्धागुण प्रगट होता

है, ज्ञानगुण प्रगट होता है, चारित्रगुण प्रगट होता है, आनन्दगुण प्रगट होता है, शान्तिगुण प्रगट होता है, स्वच्छता, प्रभुता आदि अनन्त गुण की पर्याय का अनुभव (प्रगट होता है)। सर्व गुणांश समकित की पर्याय में सर्व गुणांश आ जाते हैं। आहा...हा...! जितने द्रव्य में गुण हैं, उतनी उसकी प्रतीति करने से, निर्विकल्प अनुभव करने से उतने ही गुण के अंश पर्याय में प्रगट हो जाते हैं। समझ में आया? अपने आत्मा का अनुभव करने से इतना लाभ है। आहा...हा...! समझ में आया?



एक-एक गुण को ग्रहण करने से आत्मा का एक-एक अंश... खण्ड-खण्ड हो जाता है। सम्पूर्ण आत्मा ग्रहण नहीं होता, वह तो भेद हो जाता है, (इसलिए) विकल्प उत्पन्न होता है। गुण भी अनन्त हैं, उन एक-एक गुण को ग्रहण करने से (आत्मा का अनुभव नहीं होता)। एक-एक गुण (गिनो तो) तीन काल से अनन्तगुने गुण हैं। तीन काल के समय से अनन्त गुण हैं, कितनों को पकड़ना? आहा...हा...! एक समय में एक, एक समय में एक, अरे...! असंख्य चौबीसी में एक समय, एक गुण तो भी पार नहीं आवे इतने तीन काल से अनन्तगुने गुण हैं। आहा...हा...! भाव! जिसकी शक्ति का सत्व, उसकी संख्या का अमापना भगवान् ने (देखा है)। जहाँ चेतन वहाँ अनन्त गुण, केवली बोले ऐम; प्रगट... फुडु, शब्द पड़ा है न? फुडु प्रगट अनुभव आपका... प्रगट श्रद्धा-ज्ञान से तू अनुभव कर। निर्मल प्रेम से अनुभव कर, पुण्य-पाप का प्रेम छोड़ दे। पर का प्रेम छोड़कर भगवान् आत्मा का प्रेम लगाओ। निर्मल करो सो प्रेम... अनन्त गुण हैं, ऐसा तेरी पर्याय में प्रगट में और प्रतीति में आ जाएगा। अंशरूप से प्रगट में और प्रतीतिरूप से सम्पूर्ण अनन्त (आ जाएगा)।

आहा...हा...!

आत्मा महान प्रभु है, यह बात अन्दर में नहीं बैठी। महिमा यह पुण्य की, विकल्प की, दया, दान और धूल की (रही)। वीर्य की उल्लसितता, उल्लसितता (अर्थात्) उत्साह वह राग में या संयोग में या अनुकूलता में (चालू रही)। उस उत्साह के आगे चिदानन्दभगवान अनन्त गुण के पिण्ड का अनादर हो जाता है, असातना होती है, उसका पता नहीं है। समझ में आया? भगवान आत्मा एक समय में आत्मा को पकड़ने से, ज्ञेय करने से अनन्त गुण ज्ञान में ज्ञेय हो गये, प्रतीति में अनन्त गुण की प्रतीति हो गयी, स्थिरता में अनन्त गुण में अनन्त गुणरूप एकरूप आत्मा में भी स्थिरता हो गयी, वीर्य भी अनन्त गुणरूप एक द्रव्य की रचना करने के कार्य में वीर्य भी ऐसा कार्य करता है। आहा...हा...! समझ में आया? एक-एक गुण को ग्रहण करने से नहीं होता परन्तु अखण्ड-अभेद एक आत्मा को ग्रहण करने से अन्दर व्याप्त रहे हुए समस्त गुणों का ग्रहण हो जाएगा। इसलिए धर्मी जीव निश्चल होकर एक भगवान आत्मा... बाह्य से उपयोग को सबसे समेट कर अन्दर चैतन्य में लगाता है। (यह कोई) भाषा नहीं है, वस्तु है। भाषा से पार पड़े - ऐसा नहीं है।

भगवान आत्मा... आहा...हा...! अनन्तानन्त... अनन्तानन्त गुणरूप एक प्रभु है। मैं परमेश्वर साक्षात् प्रभु मैं ही हूँ - ऐसी महिमा आकर अन्दर में घुस जाए तो कहते हैं कि भगवान आत्मा में सर्व गुण व्याप रहे हैं, इसलिए उसका ध्यान करने से मुख्य तीन गुण प्रगट हो जाते हैं। अनन्त तो होते हैं। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र अपने निज एकरूप में तीनों अंश आ जाते हैं। कोई कहे कि ध्यान करने से उसमें दर्शन और ज्ञान (दो ही) आये, चारित्र नहीं आया। मोक्षमार्ग की अपेक्षा से (ऐसा नहीं है...) ऐसे तो अनन्त गुण प्रगट हैं, भगवान आत्मा अपना पूर्ण स्वरूप प्रभु, उसमें दृष्टि लगाने से दृष्टि, ज्ञान और स्थिरता तीनों अंश उस समय में प्रगट हुए। अनन्त गुण प्रगट हुए, यहाँ से तो मोक्षमार्ग लिया

है न!

वही सम्यक् तप है। देखो, समझ में आया? वह सम्यक् तप है। भगवान आत्मा अनन्त गुण का एकरूप (स्वरूप है), ऐसी अन्तर्दृष्टि करने से इच्छा उत्पन्न नहीं हुई और अतीन्द्रिय आनन्द की प्रतपना, अतीन्द्रिय आनन्द का तपना, विशेष शोभित होना... जैसे स्वर्ण गेरु से ओपता है / शोभता है, गेरु... गेरु... गेरु को क्या कहते हैं? स्वर्ण... गेरु। ऐसे भगवान आत्मा अपनी उग्र दृष्टि से जहाँ आत्मा को पकड़ा, वहाँ इच्छा का अभाव हुआ और अतीन्द्रिय आनन्द से प्रतपन ऐसी दशा प्रगट हुई, उसका नाम तप है। जहाँ आत्मा वहाँ अनन्त गुण प्रगट (हो जाते हैं)। समझ में आया? आहा...हा...!

भगवान आत्मा एक स्वरूप से प्रभु अन्तर्मुख दृष्टि का आश्रय भगवान को बनाया तब राग-द्वेष का अभाव होने पर निश्चय अहिंसाव्रत भी हो गया। अहिंसक परिणाम हुए। अपना भगवान आत्मा पूर्णानन्द को पकड़ कर दृष्टि में लिया तो अहिंसक परिणाम / रागरहित परिणाम उत्पन्न हुए। रागरहित परिणाम उत्पन्न हुए, वही अहिंसा, सत्यव्रत है। अहिंसा, सत्यव्रत है। अहिंसा का सच्चा व्रत है। दया के परिणाम, वह अहिंसा का सत्यव्रत नहीं है। आहा...हा...! अहिंसा का सत्य (व्रत), और अहिंसा का झूठा (व्रत)। भगवान तेरी चीज ऐसी है, भाई! आत्मा एक समय में पूर्ण शुद्ध ध्रुव को अन्तर में सन्मुख होकर दृष्टि करने से दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुए और राग की उत्पत्ति नहीं हुई। अन्दर में एकाकार होने से उतना सच्चा अहिंसाव्रत हुआ। समझ में आया? पर तरफ का लक्ष्य (करके) जो अहिंसा का शुभभाव (होता है), वह अहिंसा सत्यव्रत नहीं है, वह झूठा व्रत है। झूठे का अर्थ वह शुभभाव है तो उपचार व्यवहार है। व्यवहार उपचार है, निश्चय से झूठ है, सत्यव्रत भगवान आत्मा...! अरे...! लोगों को यह कठिन पड़ता है, हाँ! यह पर की दया का भाव... भाई! वह तो राग है न भगवान! उस राग में स्वरूप की हिंसा होती है। दुनिया के साथ मेल न खाये

तो कोई दिक्कत नहीं है। बात तो ऐसी है।

भगवान आत्मा ऐसे परलक्ष्य में जाता है तो विकल्प उत्पन्न होता है, भाई! विकल्प उत्पन्न होता है तो उतनी निर्विकल्प स्वरूप की हिंस्यते... हिंस्यते... हिंस्यते-हिंसा हो गयी। (लोगों को) यह बात नहीं रुचती, कुछ-कुछ करें तो उसमें कुछ है, कुछ है परन्तु राग नहीं करना और स्वभाव की एकाग्रता करना, उसमें सुख है। आहा...हा...! यह दया धर्म अहिंसक परिणाम होना, वह दया धर्म का मूल है। उसमें तो बाहर की बात कहना है। तुलसीदास ने! यह कहाँ था वहाँ? सब सुना है न, साठ वर्ष से सुनते हैं, 'दया, धर्म का मूल है पाप मूल अभिमान, तुलसी दया न छोड़िये, जब तक घट में प्राण।' यह तो हम दुकान पर बैठते थे, तब बहुत बाबा निकलते थे, बहुत सुना।

यह भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा वह आत्मा, उसकी अन्तर में दृष्टि करने से एकाकार होकर अनुभव होता है, वही सच्ची दया है, अपनी दया है। समझ में आया? बात ऐसी है, भाई!

मुमुक्षु : दया तो किसी की पलती है न?

उत्तर : दया अपनी पाले, किसी की पाल नहीं सकता। (पर की दया पाले वह) बात ही मिथ्या है। परद्रव्य की अवस्था आत्मा तीन काल में नहीं कर सकता। क्या परद्रव्य वर्तमान पर्याय से रहित खाली है? 'पर्याय विह्वं द्रव्यं' पर्यायरहित द्रव्य है कि उसकी पर्याय दूसरा कर दे? कल यह आया था। 'पञ्चम विह्वं द्रव्यं, द्रव्यं विह्वं पञ्चम्' महासिद्धान्त, महासिद्धान्त। कोई भी पदार्थ किसी भी समय पर्यायरहित नहीं होता। भगवान! अब तुझे क्या करना है? तुझे दूसरी पर्याय करना है? वह द्रव्य पर्यायरहित है? और तू भी तेरी पर्याय बिना का द्रव्य है? कि तेरा कार्य किये बिना रहे? आहा...हा...!

यह तो बहुत स्पष्ट तो आया है, भाई! इतनी अधिक बात बहुत आ गयी है। शास्त्रों के अर्थ, स्पष्टीकरण तो बहुत (हो गये हैं)। चार लाख साठ हजार तो बाहर आ गयी है। चालीस हजार तो इस

वर्ष छपना है। वे कहते हैं, ऐई...! एकान्त है... एकान्त है। 'उदयपुर' में तेरहपन्थ में पढ़ते थे न? उन्हें कहे एकान्त है जाओ। बन्द करो, बीस पन्थियों ने तो बन्द कर दिया है। अरे... भगवान! भाई!! एकान्त है, सोनगढ का साहित्य एकान्त है। तेरा पन्थी अकेले में कहते हैं - ऐसा खुल्ला नहीं कहते हैं। अरे... प्रभु! तूने सुना नहीं है। प्रभु! तेरा पन्थ, तेरा पन्थ - भगवान का पन्थ क्या है? ओहो...हो...! उसे बात ऐसी लगती है कि राग से आत्मा में कुछ लाभ होता है और निमित्त से कार्य में कुछ फेरफार होता है तो निमित्त की निमित्तता रहती है और राग-शुभराग से आत्मा में कुछ लाभ होता है तो शुभराग की शुभरागता रहती है। भगवान! ऐसा नहीं है, हाँ! आहा...हा...!

मुमुक्षु : अशुभ में से बचता है।

उत्तर : अशुभ से बचे वह वास्तव में तो स्वरूप की दृष्टि के कारण से बचता है। वरना तो जहाँ दृष्टि राग के ऊपर है, वहाँ बचा कहाँ से? मिथ्यात्वभाव तो है। राग की रुचि है, वहाँ मिथ्यात्वभाव तो है तो अशुभ तो मिथ्यात्व है, बचा कहाँ से? आहा...हा...! भाई मार्ग ऐसा है, हाँ! यह कोई कल्पना की बात नहीं है, वस्तु ही ऐसी है, उसमें करना क्या? भगवान ने क्या किया है? भगवान ने बनाया है? कहा है इसलिए बनाया है? उन्होंने तो जाना वैसा कहा, वैसी वस्तु ही है, अनादि की वस्तु है, उसमें तुझे क्या (करना है)? उसमें गड़बड़ करे तो नहीं चलेगा। आहा...हा...!

कहते हैं भगवान आत्मा इन राग-द्वेष के अभावसे अपने स्वरूप में एकाकार हुआ। 'जहाँ चेतन, वहाँ अनन्त गुण' उसमें यह जरा सी पर्याय लेते हैं। गुण तो अनन्त हैं, परन्तु अपने स्वरूप की एकाग्रता करनेसे वहाँ अहिंसा (होती है)। एक-एक गुण की, अहिंसागुण की पर्याय भी प्रगट होती है। वह स्व का आश्रय करने से, स्व का आश्रय करने से अहिंसा की पर्याय भी प्रगट होती है। उसमें कोई (गुण) बाकी नहीं रहता।

(प्रवचन का शेष अंश अगले अंकमें...)



पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा परमागमसार
ग्रंथके वचनामृत-२४५ पर भाववाही
प्रवचन, दि. २१-५-१९८३, प्रवचन
क्रमांक-१०६ (विषय : मार्गदर्शन)

जिन्हें अशुभके फलमें द्वेष है, उन्होंने अशुभ
भावको हेय माना ही नहीं। शुभभावके फलमें
जिन्हें गुदगुदी होती है और मिठास लगती है-
उन्होंने शुभभावको हेय माना ही नहीं। २४५.

पृष्ठ-४४, २४५वाँ वचनामृत है। 'जिन्हें अशुभके फलमें द्वेष है, उन्होंने अशुभ भावको हेय माना ही नहीं। शुभभावके फलमें जिन्हें गुदगुदी होती है और मिठास लगती है-उन्होंने शुभभावको हेय माना ही नहीं।' अनुभवप्रधान बात है। सामान्यरूपसे प्रतिकूलताका उदय आता है तब द्वेष होता है। किसी भी प्रकार की छोटी-बड़ी प्रतिकूलता होती है वह पूर्वके अशुभ परिणामका फल है। उस अशुभका फल आता है तब द्वेष होता है, ऐसा सर्वसामान्य जीवोंका परिणामन है। जगतके समस्त प्राणियोंको प्रतिकूलतामें द्वेष होता है वह अशुभके फल प्रतिका द्वेष है ऐसा कहना है। उस प्रकारके परिणाममें उसे मान्यताके साथ क्या सम्बन्ध है?

देखिये! यहाँ आचरणके परिणामको और मान्यताके परिणामको किस प्रकारसे संधि है, यह विषय है। प्रतिकूलतामें जो द्वेषका परिणाम होता है वह सामान्यरूपसे जीवके परिणामका आचरण है। उस आचरणको और मान्यताके साथ क्या सम्बन्ध है, उसे यहाँ खोलकर कहते हैं, स्पष्ट करके कहते हैं कि ऐसा आचरण होता है तो उसने अशुभभावको हेय नहीं माना है। अशुभभाव हेय माना हो तो अशुभके फलमें उसे द्वेष नहीं होना चाहिये।

ऐसा कहते हैं। ज्ञानीको अशुभके फलमें वास्तवमें द्वेष नहीं होता। वह जानता है, उसे ज्ञान है कि पूर्वमें किये हुए परिणामका यह फल है। अस्थिरताके कारण जितना द्वेष होता है वह भी योग्य नहीं है ऐसा जानते हैं। नहीं तो तर्क करते हैं कि लेकिन अशुभके फलमें उनको द्वेष होता हुआ तो दिखता है। तो कहते हैं कि उस द्वेष के प्रति भी उनको ठीक नहीं लगता है। ऐसा होता है वह ठीक नहीं हो रहा है ऐसा भाव रहता है। सामान्य जीवकी भाँति ऐसा नहीं है कि प्रतिकूलतामें तो हमें ऐसा ही होगा न। और ऐसा नहीं हो तो क्या होगा? प्रतिकूलतामें द्वेष-अणगमा तो होगा ही। तो कहते हैं कि वह प्रकार है वह तो अशुभको हेय नहीं माना है ऐसा सिद्ध होता है, ऐसा प्रदर्शित होता है। यानि की अशुभको उपादेय माना है। उसने अशुभभावको हेय नहीं माना है। उसमें से यह निकलता है कि उसने अशुभभाव को उपादेय माना है। यह परिस्थिति है।

कोई ऐसा कहे कि हमने तो हमारी समझसे ऐसा समझा है कि अशुभ तो हेय है इतना ही नहीं, अपितु शुभ भी हेय है। ऐसी हमारी समझ है। तो कहते हैं कि तेरी मान्यताका क्या सम्बन्ध है, यहाँ वह सवाल है। समझ

में बुद्धिगम्य किया हो परन्तु मान्यता अन्दरसे न फिरे तो वह बुद्धिगोचर समझ निरर्थक जायेगी। उसकी कोई सार्थकता नहीं होगी। समझके फलमें मान्यता बदले वही वास्तविक समझका कार्य है। पर्याप्त कार्य है। अन्यथा उस समझ का अपर्याप्त कार्य है अथवा वह समझ, समझके रूपमें कार्य नहीं करती है।

पूज्य गुरुदेवश्रीके उपदेशमें मान्यताका उपदेश मुख्य था। ज्ञानके अनेकविध प्रकारके परिणाममें मान्यता अनादिसे कहाँ मिथ्यापने यूँ की यूँ रही है और कब बदलती है, इस विषयमें बहुत खुलासा हुआ, बहुत स्पष्टीकरण आया। इसप्रकार शुभाशुभ उदयके कालमें जो कोई जीवका राग-द्वेषयुक्त आचरण होता है, उसमें मान्यता कहाँ बदली है और कहाँ नहीं बदली है? इस विषयमें भी उन्होंने बहुत खुलासा किया, बहुत स्पष्टीकरण आया। और मान्यताके विषयमें भी ऐसा मानता हूँ.. ऐसा मानता हूँ.. उसमें सचमुच अन्दरसे मान्यता बदली है कि नहीं? या नहीं बदली है? इस विषयमें भी बहुत स्पष्टीकरण हुआ। संक्षेपमें मुमुक्षुजीव कोई भी प्रकारकी भूल का नाश कर सके ऐसा बहुत स्पष्ट वक्तव्य, बहुत वर्ष उपदेशका काल रहा, इसलिये बहुत बातें बाहर आयी। उसमें यहाँ आचरणप्रधान बात है।

‘जिन्हें अशुभके फलमें द्वेष है...’ अणगमा है। अथवा अशुभ कर्मका उदय आये और बाहरमें कोई न कोई प्रकारसे कठिन प्रतिकूलता का उदय आये तब जीव को दुःखके परिणाम हो, तब उसे अज्ञान एवं मिथ्या मान्यता की जाँच करनी चाहिये। अथवा उसे ऐसा समझना चाहिये कि यह दुःख होता है, वह अज्ञान एवं मिथ्यात्वके कारण हो रहा है। मिथ्यात्व एवं अज्ञानके कारण दुःख होता है। ज्ञानसे कभी दुःख नहीं होता। सुख-दुःखका यह सम्बन्ध है। दुःखका कारण अज्ञान है और सुखका कारण ज्ञान है। जगत में वीतरागदेवने स्थापित किया हुआ यह सिद्धान्त है कि ज्ञान है सो एकांत सुखका कारण है और दुःखका कारण एकांत अज्ञान है। इसके

सिवाय दुःखका कोई कारण नहीं है। इसीलिये दुःखका नाश करनेके लिये अज्ञान एवं मिथ्यात्वका नाश करना चाहिये ऐसा फलित होता है।

उसी प्रकारसे शुभभावके फलमें जिसे मिठास आती है, गुदगुदी होती है यानि मिठास आती है, अनुभवप्रधान बात ली है। अनुभवमें क्या होता है यह भाषा ली है। तो कहते हैं कि ‘उन्होंने शुभभावको हेय माना ही नहीं।’ जिसे शुभके फलमें अर्थात् अनुकूलतामें ठीकपना, इष्टता, मिठास का अनुभव होगा वह अवश्य प्रतिकूलतामें द्वेषका वेदन किये बिना, दुःखका वेदन किये बिना रह सकेगा नहीं। क्योंकि वह तो आमने-सामने आघात-प्रत्याघातका ही विषय है। शुभ-अशुभ दोनों आमने-सामने प्रतिपक्षमें है। आघात-प्रत्याघात उसके समान ही आते हैं।

इसीलिये कहते हैं कि उसने शुभभावको सचमुचमें हेय माना ही नहीं। लेकिन हेय माना है ऐसा हमने विचार करके नकी तो किया है। तो कहते हैं, वह विचार करके नकी हुआ है कि नहीं उसका स्पष्ट लक्षण यह है कि तुझे अनुकूलतामें मिठास लगती है कि नहीं? प्रतिकूलतामें अणगमाका द्वेष होता है कि नहीं? और यदि इस प्रकारसे होता हो तो, पूर्वमें जो अनादि कालसे हो रहा वही परिस्थिति चालू रही है। यह बात समझनेमें आने पर परिस्थितिमें प्रथम भूमिकामें इतना फर्क होना चाहिये कि उसे सर्व उदयके कालमें जागृति वर्तनी चाहिये।

मुमुक्षुताका यह लक्षण है कि उसे सर्व उदयके कालमें जागृति वर्ते। जागृति आये वह मुमुक्षुता है। इष्ट एवं अनिष्टपना जिस प्रकारके अनुकूल-प्रतिकूल संयोगोंमें होता है वहाँ ज्ञान भले ही न हुआ हो, अभी सम्यक्ज्ञान एवं सम्यग्दर्शन भले ही प्रगट नहीं हुआ हो परन्तु यह बात समझन की भूमिका पर आयी है तो उसका कोई फल तो आना चाहिये कि नहीं कि जिसके कारण वह सम्यग्दर्शन एवं सम्यक्ज्ञान तक आगे बढ़ सके? ऐसी तो कोई उसकी भूमिका आनी चाहिये कि नहीं आनी चाहिये?

तो कहते हैं, वह भूमिका उसकी जागृतिकी भूमिका है। वह चौंकता है, जागृत रहता है और हो जाता है अनुकूलताकी मिठासका भी उसे खेद होता है और प्रतिकूलतामें दुःखभाव हो उसका भी उसे खेद होता है। ज्ञानीको उससे भिन्नता वर्तती है।

यहाँ अभी ज्ञानदशा प्रगट नहीं हुई ऐसे मुमुक्षुको एकत्वपने हो जाता है तो उसे उसका अत्यंत खेद होता है। क्योंकि उसकी जागृतदशा है इसलिये उसे उसका खेद होता है। इसप्रकार उसकी मान्यतामें फर्क पड़ना चाहिये ऐसा कहते हैं। यह इसका मीटर-नापपट्टी है कि अनुकूलतामें मिठास और प्रतिकूलतामें द्वेष, दोनों प्रकार इस तरह मान्यताके साथ सम्बन्ध रखनेवाले परिणाम हैं। और मूलमें मान्यता नहीं बदलेगी तबतक अन्य किसी भी प्रकारसे बात बदलनेवाली नहीं है। यह मूल बात है।

अतः इसप्रकार आचरणप्रधान, परिणामके आचरणप्रधान लक्षणसे मान्यताका सम्बन्ध प्रदर्शित करके उस मान्यतामें सुधार होना चाहिये इस बातका यहाँ

ध्यान खींचा है। अन्यथा मान्यताका विषय है वह थोड़ा ज्यादा सूक्ष्म है। विपरीत मान्यता जल्दी पकड़में नहीं आती। अपनी ही मान्यताकी भूल उसे समझमें नहीं आती। और शास्त्रपाठी जीव तो ऐसे भ्रममें रह जाते हैं, गलतफहमीमें रह जाते हैं कि हम बराबर समझे हैं इसलिये हमारी मान्यतामें भी फर्क हो गया है। परन्तु यहाँ तो उसे स्थूल लक्षण द्वारा बताया है कि तुझे प्रतिकूलताका उदय आया तब तुझे दुःख हुआ? तेरी अनुकूलता बनी रही उसमें तुझे मिठास आयी? तो तेरी मान्यतामें अभी कोई फर्क पड़ा है यह बात नहीं रहती। लेकिन परिणाममें मान्यताको एकदम कैसे पकड़ना? चालू उदयके कालमें जो कुछ स्वयंके परिणामकी जाँच करनी है, अवलोकन करना है और मुमुक्षुताकी भूमिकामें अवलोकनका अभ्यास शुरू करना है, उसको यह सब प्रयोगपद्धति सीखाते हैं। यह सब प्रयोगाभ्यासकी पद्धति है। २४५ वचनानामृत समाप्त हुआ।

यदि ब्रह्मचर्य आदि व्रत ले, वस्त्रादि छोड़े तो उसे ऐसा लगता है कि मैं धर्ममार्गमें कुछ आगे बढ़ा हूँ, परन्तु आत्मभान-बिना उसने उल्टे शल्यकी वृद्धि की है-मिथ्यात्वकी पुष्टि की है। २४६.

२४६. वह जो २३८ है न, उसमें भी इसका अनुसंधान तो होता ही है। वह तो अब सबमें लागू करने जैसा बोल है। अशुभमें उसको द्वेष हुआ तो उसने कीमत दे दी, उदयकी कीमत दे दी। शुभमें उसे मिठास आयी तो उसने भी उदयको कीमत दे दी। जहाँ उसने कीमत दी वहाँ उसने अधिकता की। जिसने परमें अधिकता रखी उसने आत्माके ज्ञानस्वभावको अधिकता नहीं दी।

‘कर इन्द्रियजय ज्ञानस्वभाव रु अधिक जाने आत्मको’ ज्ञानस्वभाव द्वारा जिसने आत्माको अधिक जाना है वह बाहरमें इन्द्रियोंको जीतता है अथवा अनुकूल-प्रतिकूल उदयको वह जीतता है। वह जो विषय है वह भी

‘अधिक’ शब्द कीमत देनेके लिये है। पहचानकर जिसे शुद्धात्माकी, परमात्माकी कीमत एवं अधिगता आती है उसे शुभाशुभ प्रसंग अपनेसे-स्वयंसे भिन्न होनेसे वह वास्तवमें अनुकूल-प्रतिकूल उदय मेरे स्वरूपको अकिंचित्कर है, भिन्न होनेसे मुझे लागू नहीं पड़ता। संयोगोंकी अनुकूलता मुझे लागू नहीं पड़ती, प्रतिकूलता भी मुझे लागू ही नहीं पड़ती। इसीलिये उस सम्बन्धित उपाधि मेरे आत्मामें नहीं आती है।

ज्ञानस्वभाव ज्ञाता-दृष्टा ऐसा स्वभाव मात्र ज्ञानरूप ही रहता है, मात्र ज्ञानरूप रहता हूँ ऐसी स्वरूप जागृतिपूर्वक शुभाशुभभावमें खेद न हो, खींचे नहीं, अशुभमें खेद न

हो और शुभमें खींचे नहीं, इस प्रकारकी उसकी अभ्यासकी, अंतर अभ्यासकी यदि पद्धति चले तो ही उस दिशामें सम्यग्दर्शन पर्यंत पहुँचनेका उसे अवसर आये। अन्यथा दूसरे किसी भी प्रकारसे आ नहीं सकता।

२४६. 'यदि ब्रह्मचर्य आदि व्रत ले, वस्त्रादि छोड़े तो उसे ऐसा लगता है कि मैं धर्ममार्गमें कुछ आगे बढ़ा हूँ, परन्तु आत्मभान-बिना उसने उल्टे शल्यकी वृद्धि की है-मिथ्यात्वकी पुष्टि की है।' यह भी एक, बाह्यदृष्टिवान जीव बाह्य त्याग करते हैं, व्रत, नियम, संयम अंगीकार करते हैं फिर भी धर्मप्राप्ति करनेके बजाय मिथ्यात्वरूपी अधर्मकी पुष्टि बहुत कर लेते हैं। ऐसा एक प्रकार बनता है उसके सामने लालबत्ती रखी है।

मुमुक्षु :— शल्य माने क्या?

पूज्य भाईश्री :— शल्य-शल्य। शल्य यानि क्या है कि गाँठ पड़ जाती है। शल्य है सो कषायकी एक गाँठ है। वह जो गाँठ पड़ जाती है वह छूटती नहीं है। उसे ऐसा लगता है, कैसी गाँठ पड़ जाती है? कि अब मेरे आत्मामें मैंने धर्मकी दिशामें विकास किया है, ऐसा गाँठ पड़ जाती है। क्योंकि बाहरमें उसने व्रत लिया, बाहरमें उसने त्याग किया, वस्त्रका त्याग किया यानि मुनिदशा अंगीकार करी। वह प्रकार आया। 'उसे ऐसा लगता है कि मैं धर्ममार्गमें कुछ आगे बढ़ा हूँ,....' इतना तो करता हूँ। दूसरे लोग नहीं करते हैं ऐसा कुछ मैं करता हूँ। और वह धर्मबुद्धिसे करता हूँ, ऐसा उसे लगता है।

अन्दरमें मिथ्यात्व छूटकर सम्यग्दर्शन प्राप्त करना सो धर्ममें आगे बढ़नेकी प्रथम सीढ़ी है। उस दिशामें आगे बढ़नेके बजाय, उस ओरकी उपेक्षा करके, उस प्रकारमें विकास करनेकी उपेक्षा करके बाहरमें व्रत, नियम, संयममें अपनी शक्तिको रोककर, शक्तिको वहाँ रोकी न उसने? वहाँ उसने मान्यतामें इतनी विपरीतता ग्रहण की कि मैं धर्ममें आगे बढ़ा। धर्म तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणी मोक्षमार्गः है। अभी सम्यग्दर्शन हो, मिथ्यादर्शनका नाश हो ऐसा कुछ किये बिना मैंने धर्म किया, मैंने धर्म नहीं

किया तो धर्मप्राप्तिका कोई कारण उत्पन्न किया। लो ठीक! ऐसा विचार करता है।

अपने यहाँ तो इतना समझनेके बाद कोई सीधा ऐसा नहीं कहेगा कि मैंने धर्म किया। गुरुदेवने इतना स्पष्ट किया इसीलिये कोई ऐसा तो नहीं कहेगा कि मैंने धर्म किया। परन्तु धर्म नहीं किया अपितु धर्मका कारण तो है न? हो चूका, वहाँ उसके लिये दोनों एक ही बात हो गयी। ठीक!

मुमुक्षु :— चारित्तं खलु धम्मो।

पूज्य भाईश्री :— चारित्तं खलु धम्मो। लेकिन वह चारित्र, उपयोगकी शुद्धता और स्वरूपस्थिरता सो चारित्र है। वह सम्यग्दर्शनपूर्वक होती है। अभी मूलमें सम्यग्दर्शनरूपी धर्म प्रगट नहीं हुआ हो वहाँ चारित्तं खलु धम्मो-चारित्रधर्म प्रगट हुआ है, वह तो उसे चारित्रके विषयमें मिथ्या मान्यता हुई। वह नया शल्य हुआ ऐसा कहते हैं। वह शल्य घुस गया उसको। धर्मके बहाने अर्थात् जो परिणाम धर्मके नहीं है और जो जड़की क्रिया है और आत्माकी क्रिया नहीं है, इस तरह दोनों प्रकारमें-जड़की क्रियामें आत्माकी क्रिया मानी और शुभ परिणाममें धर्मका परिणाम माना—यह दोनों उसने मान्यताके विषयमें भूल की है। ऐसा यहाँ कहना है।

सर्वप्रथम आत्माका भान करना चाहिये। सर्व शक्ति, ज्ञानकी शक्ति, पुरुषार्थकी शक्ति दो मुख्य है। ज्ञानबल और पुरुषार्थबल। और लो न, ये चारित्रबल ये व्रत, संयम अंगीकार करे उसको चारित्रबल कहो। इन सब गुणोंके परिणामको सर्वप्रथम आत्मभान करनेमें, सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेमें उस शक्तिको लगानी चाहिये। उसका उपयोग पहले वहाँ कर लेना चाहिये। वह उपयोग करनेसे सहज ही कषायकी मंदता रहे और व्रत, नियम, संयम ले तो भी वह उसे गौण रखेगा। वह तो ठीक है, वह सहज ही अपनेसे होता है इसीलिये अपने अशुभमें नहीं जाते। परन्तु उसकी ऐसी मुख्यतामें रहे कि मैंने यह किया इसलिये धर्म अथवा धर्मका कारण किया, तो कहते हैं कि उसने शल्य बढ़ाकर मिथ्यात्वकी पुष्टि की

है। गुणप्राप्ति करनेके बजाय उसने अवगुणकी प्राप्ति की है। परन्तु प्रभु! हमने तो व्रत अंगीकार किया है, नियम पाला, संयम लिया उसमें अवगुण क्या किया? उसमें हमने अवगुण किया यह बात हमें कैसे बैठे?

मुमुक्षु :— ...

पूज्य भाईश्री :— हाँ। दूसरे तो आत्माकी बात करके शुष्कज्ञानमें चले जाते हैं, और हम तो कुछ पद्धति अपनाकर बातको आचरणमें रखी है। परन्तु लोगोंको बाहरसे बाह्यदृष्टि ऐसा लगता है कि आचरण होना चाहिये। आचरणकी बात मुख्य करो। आचरण होना ही चाहिये, आचरण होना ही चाहिये। बिना आचरणके हम कोई बात नहीं माननेवाले। लेकिन भाई! आचरण तो कोई भी गुणके परिणामको उस गुणका आचरण कहनेमें आता है। क्या? कोई भी गुणके परिणाम उस गुणका आचरण गिननेमें आता है। मान्यताका परिणाम हुआ, मिथ्यात्व वह मान्यताका मिथ्या आचरण है। वही मान्यता सुल्टी हुई वह मान्यताका सम्यक् आचरण है। उसी तरह ज्ञानाचरण, उसी तरह चारित्रका आचरण, उसी तरह पुरुषार्थका आचरण। इसीलिये तो ऐसे शब्द आते हैं। पंचाचार कहते हैं कि नहीं? आचार यानि आचरण। पंचाचार शब्द आता है शास्त्रमें। दर्शन, ज्ञान, चारित्र, वीर्य और सुख अथवा तप। तप कहते हैं उसे। क्या कहते हैं? तप कहते हैं। तो वह दर्शन, ज्ञान, चारित्र, वीर्य एवं तप इन पाँचों गुणोंके परिणामको वहाँ आचरण कहा है। वह आचरणकी बात है। एक-एक गुणका परिणाम होना वह गुणका आचरण है।

तो कहते हैं कि आत्माकी सिद्धि हेतु एक मुख्य लाईन, अनुभवपूर्वक अनंत कालके जिनेन्द्र एवं सर्वज्ञ द्वारा यह बात निश्चित हुई है। हम लोग कहते हैं न कि भाई कोई काम करना हो तो उसकी लाईन फिक्स करो, लाईन चोकप कर दो कि इसी पद्धतिसे अब हमें काम करनेका है और दूसरी-दूसरी पद्धतिसे काम नहीं करना है। तो कहते हैं कि अनंत कालके जिनेन्द्रोंने एवं सर्वज्ञोंने इस विषयमें मार्गको निश्चित किया है, नियत किया है

तीनों कालके लिये। कि प्रथममें प्रथम आचरणमें भी तुझे तेरा मिथ्या आचरण बदलना और सम्यक् आचरण करना। ऐसा। वह करनेमें उस कालमें तुझे बाहरमें व्रत, नियम, संयम नहीं हो तो उसका तुझे दोष नहीं है। क्योंकि प्रथम सम्यग्दर्शन होनेके बाद भी अविरतीपना चालू रहेगा। वह सम्यग्दर्शन होने पूर्व, सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेके लिये जो तैयार हुआ है उसे बाहरमें जो व्रत, नियम, संयम न हो तो उसका इतना दोष नहीं है। सहज हो सके और रह सके तो उसे कहीं जबरजस्ती असंयममें जाना वह भी सवाल नहीं है। लेकिन वह धर्म है अथवा धर्मका कारण है ऐसा गलतीसे भी उस शल्यमें यह जीव आ न जाये, उसके लिये यहाँ पर लालबत्ती रखी है, चेताया है।

अनुभवप्रकाशमें दीपचंदजीने एक वचन लिखा है कि श्री गुरुने मार्ग सरल कर दिया है। ऐसा एक शब्दप्रयोग करते हैं। यानि की मार्गमें भूल न हो ऐसी सुगमता अनेक प्रकारके पहलूओंको स्पष्ट करके श्री गुरु कहते हैं, समझाते हैं।

मुमुक्षु :— अनादिका अभ्यास...

पूज्य भाईश्री :— लेकिन वास्तवमें क्या है कि जिसे अंतरदृष्टि विकसित करनी है और अंतरंग फेरफारपूर्वक जिसे आगे बढ़ना है उसको तो बाह्य फेरफार पर नज़र नहीं रखनी है, बाह्य फेरफारको गौण करना और अंतरंग प्रयत्नमें, अंतरंग मान्यतामें अंतर फेरफार करने पर अधिक लक्ष देना उचित है। और बाहरमें तो जीवने अनेक बार फेरफार किया है, अनंत बार फेरफार किया है, फिर भी वह कोई उसे अपनी आत्मसिद्धिके लिये सार्थक नहीं हुए, निरर्थक गये हैं। उसने बहुत कुछ किया है लेकिन वह सब निरर्थक गया है। अतः उसकी सार्थकता हो इसलिये यह सत्य मार्ग श्री गुरु दर्शाते हैं। सत्य मार्ग यह है ऐसा कहते हैं।

हम इस रास्ते पर चले हैं। अनंत जिनेन्द्रोंने स्वयंके अनुभवसे कहा है। अनुभवसे हमने इस बातको सिद्ध की है और अनुभवपूर्वक इस बातको दर्शाते हैं। इस विधिसे आप इस मार्गमें विकास करोगे तो आपको उसके

फलस्वरूप सिद्धि होगी और नहीं तो अन्य प्रकारसे दूसरा उपाय करोगे तो वह सब परिश्रम व्यर्थ जायेगा। ऐसा कहना चाहते हैं। जगतमें जो धर्मके संप्रदाय हैं...

... विषय जैनदर्शनमें है, वह जगतके किसी भी दर्शनमें नहीं है, ऐसा चलेन्ज मारकर कह सकते हैं। इतना यह विषय इसके अन्दर स्पष्ट है और यह पायेका विषय है। इससे अतिरिक्त ज्ञान-चारित्रका विषय सब उल्टे घड़े पर उल्टा घड़ा रहे ऐसा है। किसी भी बातको सुल्टी नहीं गिन सकते। क्योंकि जन्म-मरणका निषेध करनेवाला जो सम्यग्दर्शन एवं सम्यग्ज्ञान है सो आत्मसिद्धिका नींवका विषय है, नींव ही न हो उसका मकान हो, यह बात मानने जैसी नहीं है।

मुमुक्षु :— ... कुछ ज्यादा ही गौण हो गया है ऐसा नहीं लगता ?

पूज्य भाईश्री :— नहीं। उसमें क्या है कि सामान्यरूपसे जीव परिपूर्ण शुद्धिरूप ध्येय नक्की करे कि मुझे तो मेरा संपूर्ण शुद्धत्व चाहिये। कषायका एक कण भी मुझे नहीं चाहिये। ऐसा जो मोक्षार्थी है, मोक्ष अभिलाषी है अथवा पूर्णताके ध्येयका जिसने ध्येय बाँधा है, ध्येयस्वरूप निश्चित किया है उसे सहज ही कषायकी मंदताके परिणाम हो जाते हैं। वह हो जाते हैं फिर भी उसकी मुख्यता नहीं करता, यह उसकी विशिष्टता है।

जिसे वह परिणाम नहीं होते और तीव्र कषायमें भी उसे मालूम नहीं पड़ता कि मोक्षमार्गमें ऐसे तीव्र परिणाम रखकर मैं आगे कैसे बढ़ूँगा ? यह भी जिसे मालूम नहीं पड़ता है ऐसे जीवको तो, व्रत करेगा तो कोई लाभ होगा

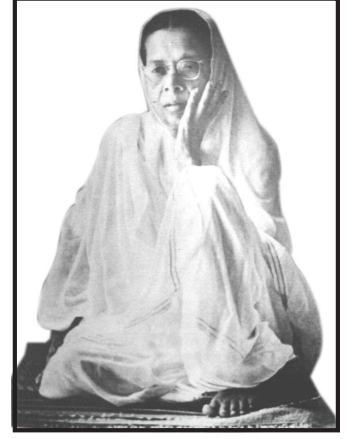
ऐसा तो कह नहीं सकते। क्योंकि वह मिथ्यात्वकी पुष्टिमें चला जायेगा। मार्ग तो मार्गकी रीतिसे ही है। उसमें तो कोई जीवके लिये अलग है और कोई जीवके अलग है ऐसा नहीं है। वह तो स्पष्ट किया है कि सर्वप्रथम पूर्णताके लक्ष्यसे, पूर्णताके ध्येयसे वास्तविक शुरूआत करनी है। अन्य सब शुरूआत अवास्तविक है।

यानि कि यहाँ किसीको कहीं बाह्याचरणमें से शिथिलता करवाकर उसे कोई तीव्र पापके परिणाममें ले जानेका तो कहीं भी हेतु ही नहीं है। किन्तु योग्य मार्ग पर मोडनेका, योग्य दिशासूचन करनेका अभिप्राय रहा है। ऐसा अर्थ निकालना चाहिये। उसे कोई पापके परिणाममें ले जानेके लिये इसमें से कोई कारण मिलेगा ऐसा अनर्थ नहीं निकालना चाहिये। वह सहजरूपसे आता है, यथायोग्यरूपसे आता है। फिर भी कोई जीवका अनजानेमें दोष रह जाये तो उसका वह दोष निकल जायेगा। ज्ञानीकी भूल, आचरणकी भूल कोई क्षयोपशमके कारण रह जाये तो, वह भावना परिपूर्ण शुद्धिकी है इसलिये निकलनेमें देर नहीं लगेगी। ऐसा कहना है। लेकिन जो पहले बाह्याचरणमें सावधान है कि बाहरमें इतना-इतना-इतना तो अवश्य ही पकड़कर रखो, पालन करते ही रहो। उसके बाद ही हमें दूसरा कुछ सोचना है, इसप्रकार उसकी मुख्यता हो गयी तो वह मुख्यता शल्यमें परिणमित हो जायेगी, मिथ्यात्वकी पुष्टिमें परिणमित हो जायेगी। उसकी यहाँ सावधानी करवाई है।

(३४:५० मिनट तक, प्रवचनका शेष अंश अगले अंकमें...)

ट्रस्टके इस स्वानुभूतिप्रकाशके हिन्दी अंक (अगस्त-२०२१)का शुल्क स्व. श्री हीरालालजी जैन परिवार, भावनगरके नामसे साभार प्राप्त हुआ है जिस कारणसे यह अंक सभी पाठकोंको भेजा जा रहा है।

पूज्य बहिनश्री की वीडियो तत्वचर्चा
मंगल वाणी-सी.डी. १०-B



मुमुक्षु :- ... और बाधक नहीं है। जैसे जिसकी विष की डाढ़ निकाल दी है वैसा सर्प नुकसान नहीं कर सकता, वैसे ज्ञानी को अविद्या, रागादि कुछ नहीं कर सकते, ऐसा श्रुति का वचन है।

समाधान :- किसने निकाला है ?

मुमुक्षु :- .. का वचन है, मंगलिक समाचार पत्रिका प्रकाशित होती है उसमें ऊपर आता है।

समाधान :- .. कुछ नुकसान नहीं कर सकते। जिसे ज्ञानदशा प्रगट हुई है उसे रागादि कुछ नहीं कर सकते। रागादि नहीं है अर्थात् ज्ञायक में नहीं है और है तो उसे नुकसान नहीं करते, उसे बाधक नहीं है। क्योंकि उसने ज्ञायक को पहचान लिया है, ज्ञायक भिन्न हो गया है इसलिये उसे नुकसानकर्ता नहीं है। अस्थिरता की बात को गौण करके द्रव्यदृष्टि की अपेक्षासे उसे ज्ञाताधारा प्रगट हुई है इसलिये उसे कुछ नुकसानकर्ता नहीं है।

मुमुक्षु :- समयसार की शैली लें तो दृष्टि की मुख्यतासे..

समाधान :- दृष्टि की मुख्यतासे उसे कुछ नुकसानकर्ता नहीं है, उसे बाधक नहीं है। उसके कारण उसे आत्मा को नुकसान नहीं होता, दृष्टि की अपेक्षासे नहीं होता, बाकी अस्थिरता में जो थोड़ी क्षति है, थोड़ी क्षति है।

मुमुक्षु :- इसका सम्पादन किसी जैनने किया है ?

मुमुक्षु :- नहीं। यह तो मुंबई समाचार है। लौकिक समाचार पत्र है। अन्यमति का श्रुति शास्त्र होगा उसका है।

समाधान :- अन्यमति का हो ऐसा नहीं है, ऐसा नहीं है। द्रव्यदृष्टि की मुख्यतासे बराबर है। अविद्या या रागादि कुछ जानते नहीं। अज्ञान ले लो। ज्ञानदशा प्रगट हुई है इसलिये रागादि कुछ नहीं कर सकते।

मुमुक्षु :- माताजी! गुरुदेव के वचनामृत में आता है कि सम्यग्दृष्टि सभी जीवों को जिनवर जानते हैं और जिनवर को जिन जानते हैं। आहा..! कितनी विशाल दृष्टि!

समाधान :- सम्यग्दृष्टि सभी को जिनवर जानते हैं ?

मुमुक्षु :- हाँ, और जिनवर को जीव जानते हैं। आहा..! कितनी विशाल दृष्टि! इसमें विशाल दृष्टि कहकर क्या कहना चाहते हैं ?

समाधान :- दृष्टि कितनी द्रव्य पर चली गई है, कितनी विशाल दृष्टि! पर्याय को गौण कर दी। जीव सो जिनवर और जिनवर सो जीव है, कितनी दृष्टि की विशालता! अर्थात् यथार्थ दृष्टि कितनी विशाल! प्रत्येक पर्याय को गौण करके एक द्रव्य को ही देखते हैं। सभी को द्रव्यदृष्टिसे ही देखते हैं। दृष्टि कितनी विशाल! विशाल यानि कितनी उसकी विशालता! कि जैसा मैं वैसे ही सब हैं, उसमें कोई भेद नहीं देखते। ऐसे विशाल। दृष्टि उनकी द्रव्य पर है। जैसा मेरा द्रव्य है वैसा ही सभी का द्रव्य है। वैसा सभी का द्रव्य यानि कितनी विशालता है! किसीकी पर्याय को नहीं देखकर द्रव्य को देखते हैं।

मुमुक्षु :- उदार दृष्टि।

समाधान :- कितनी उदार दृष्टि! सभी को द्रव्य देखते हैं, सभी को सिद्ध भगवान जैसे, सभी को जिनवर जैसे देखते हैं। उसमें कोई भेद नहीं देखते। द्रव्य को ही देख रहे हैं।

मुमुक्षु :- माताजी! तो फिर पर्यायसे देखना यह संकुचितता है। इसे दृष्टि की संकुचितता कह सकते हैं?

समाधान :- यह द्रव्य की अपेक्षासे बात है। द्रव्य की अपेक्षासे विशालता। पर्याय में वह विवेक करे तो वह संकुचितता नहीं है। वह तो यथार्थ ज्ञान (है)। यथार्थ ज्ञान होता है। पर्याय में उसका विवेक करे कि वह किस भूमिका में खड़ा है, उसका विवेक तो करे। संकुचितता अज्ञानदशा की अपेक्षासे संकुचितता कहें। अज्ञानदशा में मैं कैसा? यह कैसा? अपने थोड़े गुण देखकर महत्ता आ जाये, दूसरा निम्न कक्षा का, मैं उच्च कक्षा का, ऐसे अज्ञानदशा की अपेक्षासे संकुचितता है। बाकी यथार्थ ज्ञान द्रव्यदृष्टि की अपेक्षासे विशालता, और पर्याय में ज्ञान करे कि वह कौन-सी भूमिका में है? अज्ञानदशा में है या सम्यग्दृष्टि है या चारित्रदशा में है? इसप्रकार पर्याय में विवेक तो करे। उसकी भूमिका कितनी है? ऐसा विवेक करे तो वह कोई संकुचित दृष्टि नहीं है। द्रव्य और पर्याय। द्रव्यदृष्टिसे सब सिद्ध भगवान जैसे, पर्याय में वह संसारदशा में है, सिद्ध है, इसप्रकार पर्यायसे भी ज्ञान करे।

मुमुक्षु :- स्वयं को एक समय की पर्याय जितना अनुभव करे तो वह दृष्टि की संकुचितता है तो वह किसप्रकार? इसमें विशालदृष्टि कहा कि द्रव्य की दृष्टि वह विशालदृष्टि। सब को परमात्मस्वरूप देखना यह दृष्टि की विशालता है। तो मैं शरीर जितना हूँ, मैं रागी हूँ, मैं एक समय की पर्याय जितना हूँ, वह सब पर्यायदृष्टि है। पर्यायदृष्टि को कोई अपेक्षासे संकुचितता कह सकते हैं?

समाधान :- अज्ञानदशा में संकुचितता है। पर्याय जितना ही स्वयं को मानता है और पर्याय को गौण नहीं करता और द्रव्य को नहीं देखता। अज्ञान की अपेक्षासे पर्यायमात्र को ग्रहण करता है इसलिये वह संकुचितता है। मात्र पर्याय को ग्रहण करता है।

मुमुक्षु :- द्रव्य अनंतगुण है और पर्याय एक समय की है, फिर भी अज्ञानी पर्याय को ही पूर्ण आत्मा मानता है और पूर्ण द्रव्य रह जाता है, इस अपेक्षासे ...

समाधान :- उस अपेक्षासे संकुचित दृष्टि है, (द्रव्यदृष्टि) विशाल है। द्रव्य की जो अनन्तता है उसे नहीं देखता और क्षणिक पर्याय जितना मानता है, इसलिये स्वयं को क्षणिक, प्रतिक्षण बदलता रहता है ऐसा मानता है, इसलिये उसकी दृष्टि संकुचित है। निज द्रव्य को अनन्त शक्ति संपन्न नहीं देखता। इसलिये उस अपेक्षासे विशाल दृष्टि है।

मुमुक्षु :- इसमें दो बात लेनी कि स्वयं को ऐसा देखना वह भी विशाल दृष्टि है और ऐसी दृष्टि प्रगट होनेपर सब आत्मा परमात्मस्वरूप ही है..

समाधान :- उसकी दृष्टि में ऐसा आता है। वह बाहर देखने नहीं जाता। लेकिन स्वयं को द्रव्यस्वरूप देखता है इसलिये वह सभी को द्रव्यस्वरूप देखता है। उसके ज्ञान में सभी को द्रव्य अपेक्षासे देखता है। एक पर्याय जितना स्वयं को मानता है वह स्वयं की संकुचित दृष्टि है। वैसे ही दूसरों को देखता है। अपनी अनन्ततासे भरितावस्थ स्वयं है उसे देखता नहीं। (ऐसे देखे तो) उसकी दृष्टि विशाल और निर्मल हो जाती है।

मुमुक्षु :- स्वयं को अनन्तरूप देखना वह दृष्टि की विशालता है।

समाधान :- विशालता है। अनन्त यानि भेद करके नहीं देखता। स्वयं अनन्त शक्तिसे भरितावस्थ मैं हूँ। एक पर्याय जितना नहीं हूँ, परन्तु अनन्त-अनन्त शाश्वत अनन्त शक्तियों-से भरा हूँ।

मुमुक्षु :- बहुत सुन्दर बात कही। अभेदरूप इसप्रकार देखता है।

समाधान :- अभेदरूप देखता है।

मुमुक्षु :- माताजी! एक और प्रश्न है। थोड़े दिन पहले आपके श्रीमुखसे ऐसा आया था कि ज्ञायक को यथार्थ पहचानकर अथवा ज्ञायक तत्त्व का यथार्थ निर्णयकरके वास्तव में तो उसे स्थिरता का प्रयत्न करना है, विकल्प नहीं करते रहना है। तो स्थिरता का प्रयत्न करना है, उसमें कुछ विशेष स्पष्टता आप कीजिये कि इसप्रकार ज्ञायक को पहचानकर स्थिरता करनी है। स्थिरता करनी यानि विकल्प तो प्रतिक्षण आये बिना रहते नहीं और फिर भी स्थिरता का प्रयत्न करना है, ऐसा कहकर आपको क्या कहना है?

समाधान :- ज्ञायक का यथार्थ निर्णय और निःशंकता हो, फिर बाहर जानेवाले जो विकल्प हैं, उसकी परिणति अस्थिरता की भाँति बदलती रहती है। कभी कोई विकल्प, कभी कोई विकल्प, कभी कोई विकल्प। अस्थिरता की भाँति जो परिणति बाहर दौड़ती रहती है, उसने जो निर्णय किया है उसे दृढ़ करके, ज्ञायक अवलम्बन लेकर एक ज्ञायक को ग्रहण करके उसमें स्थिर हो जाना, चारों ओर जो विकल्प दौड़ते हैं वहाँ-से मुड़कर, विकल्प को मर्यादा में लाकर स्वयं में अस्थिरता के बजाय एक स्थान में स्थिर रहना। स्थिरता का प्रयत्न, इसका यह भाव है। एक ज्ञायक की ज्ञाताधारा। उसमें ज्ञाताधारा आ गयी, उसमें स्थिरता आ गयी, उसमें स्थिरता आ गयी। विकल्प की आकुलता में दौड़ा-दौड़ी करता था, उसे मर्यादा में लाकर, स्वयं ज्ञायक-में ज्ञाता हूँ, मैं तो ज्ञाता हूँ ऐसा आ गया, उसमें स्थिर हो गया। उसमें अडिग हो गया। उसमें निःशंक हो गया। स्थिर होने का प्रयत्न। स्थिरता का अर्थ स्थिरता करनी।

मुमुक्षु :- मैं एक अखण्ड ज्ञायकमूर्ति हूँ, ऐसा सच्चा निर्णय करके बुद्धिपूर्वक मन का अवलम्बन नहीं लेना, ऐसा आप का कहने का आशय था?

समाधान :- बुद्धिपूर्वक मन का अवलम्बन आता है, लेकिन उसकी चारों ओर दौड़ा-दौड़ी, कभी ये विकल्प, कभी वह, यदि निःशंक हो गया है तो उसे ग्रहण करके उसमें तू स्थिर हो जा, उसमें तू लीन हो जा। विकल्प की दौड़ा-दौड़ी निष्प्रयोजन है। निष्प्रयोजन विकल्प की हारमाला में खड़ा रहता है, उसके बजाय स्वरूप में लीन हो जा, उसमें स्थिर हो जा, ऐसा कहना है। फिर भी वह स्थिर नहीं रह सके तो श्रुत के विचार तो अनेक प्रकार के आते हैं, तो भी तेरे मति-श्रुत के उपयोग को मर्यादा में लाकर तू स्वरूप की ओर जा, ऐसा आता है। मति-श्रुत का उपयोग जो बाहर जाता है, उसे मर्यादा में ले आ, ताकि तू निज सन्मुख हो सके। तू तेरे में स्थिर हो जा, तेरे में लीन हो जा। उपयोग बाहर जाता है उसे मर्यादित करके तू अंतर में जा, यह कहना है।

मुमुक्षु :- माताजी! यह श्रद्धा की अपेक्षासे या चारित्र की अपेक्षासे?

समाधान :- स्वरूप रमणता एक प्रकार का चारित्र है। श्रद्धा की अपेक्षासे स्थिर होना है। श्रद्धा में भी स्थिरता आती है। चारित्र जो देशव्रत, पंच महाव्रत वह अलग है। यह तो श्रद्धा में भी चारित्र का-स्वरूप रमणता का चारित्र आता है। श्रद्धा अपेक्षासे है। उसमें भी स्थिर होना और लीन होना आता है।

मुमुक्षु :- माताजी! सामान्यतः क्या होता है कि मैं एक अखण्ड ज्ञायक हूँ। तत्त्व का निर्णय यथार्थ होना एक प्रकार है और यथार्थ नहीं हो वह दूसरा प्रकार है, लेकिन तत्सम्बन्धित विकल्प की कतार चलती है कि मैं एक अखण्ड ज्ञायक हूँ, शुद्ध हूँ, परिपूर्ण हूँ, ऐसे विकल्प की कतार चलती रहती हो, मानो कि जैसे अभिप्राय में (ऐसा लगता है कि) विकल्पसे प्राप्त होगा। वर्तमान में सुना है इसलिये ख्याल आता है कि विकल्प बहिर्मुख भाव है इसलिये उससे प्राप्त नहीं होता। ऐसा निर्णय करके स्थिर कर ऐसा जो आपका वज़न था तो उसमें आपको कुछ ऐसा कहना था कि बुद्धिपूर्वक, जैसे अभी आपने कहा कि (मति-श्रुतज्ञान को) तू अंतर में ले जा।

समाधान :- मैं अखण्ड हूँ, ज्ञायक हूँ, शुद्ध हूँ आदि विचार आते रहते हैं। दूसरे विचार आये तो उसके साथ (यह विचार आये कि) मैं यह नहीं हूँ, मैं तो अखण्ड ज्ञायक हूँ, मैं तो अखण्ड ज्ञायक हूँ, ऐसा विकल्प आये। लेकिन अखण्ड

ज्ञायक कौन है? मैं अखण्ड ज्ञायक हूँ, ऐसे विकल्प के बाद तू स्थिर हो जा, ऐसा कहना था। परन्तु यथार्थ ज्ञायक ग्रहण हुआ हो तो उसमें स्थिर हो न। ज्ञायक ग्रहण हुआ हो तो विकल्प के साथ जो ज्ञायक रहा है, उस ज्ञायक में स्थिर हो जा, ऐसा कहना था। लेकिन ज्ञायक ग्रहण हुआ हो तो उसमें स्थिर होने का प्रयत्न करे। नहीं तो मैं अखण्ड हूँ, ज्ञायक हूँ ऐसे विकल्प की कतार चलती ही रहेगी। ज्ञायक ग्रहण हुआ हो तो उसमें स्थिर हो।

मुमुक्षु :- ऐसा ज्ञायक ग्रहण हुआ हो तो उसे बाह्य प्रवृत्ति में कुछ दिखाई दे कि यह परिवर्तन हुआ है या नहीं?

समाधान :- उसे यथार्थरूपसे ज्ञायक ग्रहण हुआ हो, ऐसी ज्ञाताधारा शुरु हुई हो तो उसके लक्षणसे पहचाना जा सकता है, लेकिन स्वयं में पहचानने की उतनी शक्ति हो तो पहचाने।

मुमुक्षु :- खुद को तो उस जाति का .. आनन्द आये?

समाधान :- स्वयं को तो पहचान सकता है। दूसरे को पहचानने के लिए उसकी शक्ति हो तो पहचान सके। स्वयं को तो पहचान सके। स्वयं को आनन्द प्रगट हुआ हो वह स्वयं तो पहचान सके, उसे पकड़ सके। स्वयं खुदसे गुप्त नहीं रहता। स्वयं तो यथार्थपने पहचान सकता है।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- वह आनन्द वाणी में तो आ नहीं सकता। आत्मा अनुपम है, उसे कोई उपमा नहीं दे सकते। आत्मामें-से प्रगट होता आनन्द को कोई उपमा लागू नहीं पड़ती। कोई विकल्प की अपेक्षा लागू नहीं पड़ती। जो आत्मामें-से सहज प्रगट होता है वह स्वानुभूति में उसे ग्रहण होता है। वह अनुपम है, उसे कोई उपमा लागू नहीं पड़ती। आत्मा में एक आनन्द स्वभाव गुण है और वह गुण, विकल्प की आकुलता टूट जाये और विकल्प छूट जाये, उसके पीछे तो एक ज्ञायक स्वयं रहता है। विकल्प कतार टूटकर जो ज्ञायक रह जाता है उस ज्ञायक में जो गुण है, वह उसे प्रगट होते हैं। उसकी परिणति प्रगट होती है। उसमें आनन्दादि गुण जो प्रगट होते हैं वह स्वयं अनुभूति में ग्रहण कर सकता है। उसे निःशंकपने ग्रहण कर सकता है, उसमें उसे शंका नहीं होती, किसीको पूछने नहीं जाना पड़ता, वह स्वयं ही ग्रहण कर सकता है।

मुमुक्षु :- ऐसा उपदेश सुनकर भी उसकी वृत्ति में मजबूती नहीं आती, इसका क्या कारण है?

समाधान :- मजबूती नहीं आने का कारण स्वयं है। स्वयं ही है, अन्य कोई (कारण) नहीं है। खुद मजबूती लाये तो आये। मजबूती खुद लाता नहीं। अनादि के अभ्यास में चला जाता है। उसे दिखाई नहीं देता, मजबूती नहीं आती लेकिन उसे लक्षणसे आत्मा को पहचानकर निर्णय करना चाहिये कि यह आत्मा जो सुख, आनन्द की इच्छा करता है वह खुद ही स्वयं ही सुखरूप है। बाह्य में सुख की इच्छा करता हुआ सुख को बेसब्रीसे चाहता है। आनन्द को बेसब्रीसे चाहता है, लेकिन बाहरसे मिलता नहीं। आकुलता आकुलता रहती है। उसके पीछे आकुलता ही होती है। इसलिये जो सुखस्वरूप है, सुख की वांछा करता है वह खुद ही सुखस्वरूप है। इसलिये बाहर का आश्रय छूट जाये, स्वयं अकेला रह जाये तो खुदमें-से ही आनन्द और सुख प्रगट होता है। उसका निर्णय खुद करे तो होता है।

मुमुक्षु :- बाहर में हितबुद्धि छूटी नहीं है।

समाधान :- हितबुद्धि छूटी नहीं है। खुद में ही हित रहा है, ऐसा निर्णय करे तो स्वयं ही खुद का आश्रय ले और स्वयंमें-से ही प्रगट होता है।

मुमुक्षु :- परसे हितबुद्धि छोड़ने का उपाय खुद को ही करना है।

समाधान :- खुद को ही करना पड़ता है, अन्य कोई नहीं कर देता। स्वयं की रुचि बाहर में जाये, खुद बाहर दौड़ता है इसलिये स्वसन्मुख होता नहीं, श्रद्धा करता नहीं। कोई जबरदस्ती करवा दे तो वापस ले ले, इसलिये खुद को ही करना है। स्वयं ही निर्णय करे और स्वयं ही दृढ़ता करके स्वयं की ओर झुकना पड़ता है।

धन्य अवतार!

पूज्य बहिनश्री चंपाबेनके संबंधमें परमपूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामीके उद्गार

बहिन विदेहसे आयी हैं। उन्हें तो असंख्य अरब वर्षका जातिस्मरणज्ञान है। असंख्य अरब वर्षकी बात, कलकी आज दिखे इस प्रकार दिखती है। ...आत्मजातिका ज्ञान होना वह यथार्थ जातिस्मरण है- अनंत अनंत गुणोंका नाथ उसका ज्ञान अंतरमें होना वह (परमार्थ) जातिस्मरण है।



ता.१९-८-८०

बहिनको खबर नहीं कि कोई लिख लेगा। उन्हें बाह्य प्रसिद्धिका जरा भी भाव नहीं। धर्मरतन हैं, भगवती हैं, भगवतीस्वरूप माता हैं। (उनके यह वचन) आनन्दमेंसे निकले हैं। भाषा मीठी आ गयी है।



बहिन अभी तक गुप्त थीं। अब ढँका नहीं रहेगा-छिपा नहीं रहेगा। उनके वचन तो भगवानकी वाणी है, उनके घरका कुछ नहीं है-दिव्यध्वनि है। बहिन तो महाविदेहसे आयी हैं। यह वचनमृत लोग पढ़ेंगे, मनन करेंगे, तब ख्याल आयेगा कि यह पुस्तक कैसी है! अकेला मक्खन है।



ता.१९-२-७८

(बहिनकी) यह वाणी तो आत्माके अनुभवमें-आनन्दमें रहते-रहते आ गयी है। हम भगवानके पास पूर्वभवमें थे। बहुत ऊँची बात है। इस समय यह बात और कहीं नहीं है। बहिन (चंपाबेन) तो संसारसे मर गयी हैं। अपूर्व बात है बापू!



बहिनकी पुस्तक तो ऐसी बाहर आ गई है कि मेरे हिसाबसे तो सबको भेंट देना चाहिये। बहुत सादी-बालक जैसी भाषा; संस्कृत भाषा नहीं। बहुत जोरदार गंभीर बातें उसमें हैं।



अहाहा! यह ऐसी चीज लोगोंके भाग्यसे बाहर आ गई। इसमें पुकारा है आत्माको। ऊपर बहिनका फोटू है-बहुत अच्छा; शांत-शांत!!



बहिन तो बहिन ही हैं; उनके जैसा दूसरा कोई नहीं है। यहाँ हमें कहाँ कुछ छिपा रखना है? बहिन तो अजोड़ हैं, अकेली ही हैं। हमारे कुछ खानगी-गुप्त है नहीं।



बहिनकी पुस्तकमें बहुत संक्षिप्त और माल-माल है। अन्यमतियोंको भी पसन्द आये ऐसा है। ...अरे! उसमें तो तेरी महिमा और बढ़ाईकी बातें हैं। मुनियोंकी कैसी बात ली है! - 'मुनियोंको बाहर आना वह बोझ लगता है।' यह पुस्तक बाहर आई सो बहुत ही अच्छा हुआ। अंदर थोड़ेमें बहुत सी बातें हैं।





द्रव्यदृष्टि प्रकाशमें से, मार्गदर्शन विषय सम्बन्धित
पूज्य श्री निहालचंद्रजी सोगानीजी के
चयन किये गये वचनामृत

पहले तो धारणा बराबर होनी चाहिए; लेकिन धारणा अन्तरमें उतरे तभी सम्यग्ज्ञान होता है। धारणामें भी लक्ष्य तो इधरका (आत्माका) होना चाहिए। ५२१.

उल्लास में उल्लास आ जावे, वह योग्य नहीं। (राग होना वह उतना अपराध नहीं है जितना कि राग का राग होना। क्योंकि राग का राग अनन्तानुबन्धीका कषाय है।) ५२६.

सुनना, पढ़ना, चर्चा करना—यह सभी ऊपर-ऊपरकी बातें हैं; असलमें तो अन्दरमें जम जाना चाहिए, स्वरूपमें ऊँड़े उतर जाना चाहिए। ५३०.

प्रश्न : शुरूआतवालेको अनुभवका कैसे प्रयत्न करना?

उत्तर : 'मैं परिणाम मात्र नहीं हूँ,' 'त्रिकाली ध्रुवपनेमें अपनापन स्थापना'—यही एक उपाय है। ५३२.

एक ही 'मास्टर की' (Master Key) है; सब बातोंका सब शास्त्रोंका एक ही सार है - 'त्रिकालीस्वभावमें अपनापन जोड़ देना है'। ५३३.

इसका (ध्रुव-दृष्टिका) बल आए बिना, (जीव) दूसरी जगह अटकेगा ही। ५३५.

सुननेमें भी एकान्त उल्लास नहीं होना चाहिए, दीनता लगनी चाहिए, खेद होना चाहिए। (मुमुक्षुकी भूमिकामें जिसको स्वरूपप्राप्तिकी तीव्र लगन है उसे स्वरूपकी अप्राप्तिमें, सुनने आदिके भावमें भी असंतोष/खेद वर्तता है।) ५५१.

२६२

बंबई, श्रावण सुदी, १९४७

उपाधिके उदयके कारण पहुँच देना नहीं हो सका, उसके लिये क्षमा करें। यहाँ हमारी उपाधिके उदयके कारण स्थिति है। इसलिये आपको समागम रहना दुर्लभ है।

इस जगतमें चतुर्थकाल जैसे कालमें भी सत्संगकी प्राप्ति होना बहुत दुर्लभ है, तो इस दुःषमकालमें उसकी प्राप्ति परम दुर्लभ होना संभव है, ऐसा समझकर जिस जिस प्रकारसे सत्संगके वियोगमें भी आत्मामें गुणोत्पत्ति हो उस उस प्रकारसे प्रवृत्ति करनेका पुरुषार्थ वारंवार समय समय पर और प्रसंग प्रसंगपर करना चाहिये, और निरंतर सत्संगकी इच्छा, असत्संगमें उदासीनता रहनेमें मुख्य कारण वैसा पुरुषार्थ है, ऐसा समझकर जो कुछ निवृत्तिके कारण हों उन सब कारणोका वारंवार विचार करना योग्य है।

हमें यह लिखते हुए ऐसा स्मरण होता है कि 'क्या करना?' अथवा 'किसी प्रकारसे नहीं हो पाता?' ऐसा विचार आपके चित्तमें वारंवार आता होगा, तथापि ऐसा योग्य है कि जो पुरुष दूसरे सब प्रकारके विचारोंको अकर्तव्यरूप जानकर आत्मकल्याणमें उत्साही होता है उसे कुछ नहीं जाननेपर भी उसी विचारके परिणाममें जो करना योग्य है, और किसी प्रकारसे नहीं हो पाता, ऐसा भासमान होनेपर उसके प्रगट होनेकी स्थिति जीवमें उत्पन्न होती है, अथवा कृतकृत्यताका साक्षात् स्वरूप उत्पन्न होता है।

दोष करते हैं ऐसी स्थितिमें इस जगतके जीवोंके तीन प्रकार ज्ञानी पुरुषने देखे हैं (१) किसी भी प्रकारसे जीव दोष या कल्याणका विचार नहीं कर सका, अथवा करनेकी जो स्थिति है उसमें बेभान है, ऐसे जीवोंका प्रकार है। (२) अज्ञानतासे, असत्संगके अभ्याससे भासमान बोधसे दोष करते हैं उस क्रियाको कल्याणस्वरूप माननेवाले जीवोंका दूसरा प्रकार है। (३) उदयाधीनरूपसे मात्र जिसकी स्थिति है, सर्व परस्वरूपका साक्षी है ऐसा बोधस्वरूप जीव, मात्र उदासीनतासे कर्ता दिखायी देता है; ऐसे जीवोंका तीसरा प्रकार है।

इस तरह ज्ञानी पुरुषने तीन प्रकारका जीव-समूह देखा है। प्रायः प्रथम प्रकारमें स्त्री, पुत्र, मित्र, धन आदिकी प्राप्ति-अप्राप्तिके प्रकारमें तदाकार-परिणामी जैसे भासित होनेवाले जीवोंका समावेश होता है। भिन्न-भिन्न धर्मोंकी नामक्रिया करनेवाले जीव, अथवा स्वच्छंदपरिणामी और परमार्थमार्गपर चलते हैं ऐसी बुद्धि रखनेवाले जीवोंका दूसरे प्रकारमें समावेश होता है। स्त्री, पुत्र, मित्र, धन आदिकी प्राप्ति-अप्राप्ति इत्यादि भावमें जिन्हें वैराग्य उत्पन्न हुआ है अथवा हुआ करता है; जिनका स्वच्छंद-परिणाम गलित हुआ है, और जो ऐसे भावके विचारमें निरंतर रहते हैं, ऐसे जीवोंका समावेश तीसरे प्रकारमें होता है। जिस प्रकारसे तीसरा भेद सिद्ध हो ऐसा विचार कर्तव्य है। जो विचारवान है उसे यथाबुद्धिसे, सद्ग्रंथसे और सत्संगसे वह विचार प्राप्त होता है, और अनुक्रमसे दोषरहित स्वरूप उसमें उत्पन्न होता है। यह बात पुनः पुनः सोते जागते और भिन्न भिन्न प्रकारसे विचार करने, स्मरण करने योग्य है।

